HIN3B18b
माखनलाल चतुर्वेदी (१८८९-१९६८)

कैदी और कोकिला

0 क्या गाती हो ?
क्यों रह-रह जाती हो ?
कोकिल बोलो तो !
क्या लाती हो ?
संदेशा किसका है ?
कोकिल बोलो तो !

1 ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट-भर खाना,
मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना ।
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है ?
हिमकर निराश कर चला रात भी काली,
इस समय कालिमामयी जगी क्यूँ आली ?
क्यों हूक पड़ी ?
वेदना-बोझ वाली-सी ;
कोकिल बोलो तो !
क्या लुटा ?
मृदुल वैभव की रखवाली-सी,
कोकिल बोलो तो !

2 बन्दी सोते हैं, है घर-घर श्वासों का
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाज़ों का,
बूटों का, या सन्त्री की आवाज़ों का,
या करते गिननेवाले हाहाकार !
सारी रातों है –एक, दो, तीन, चार– !
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा ! मधुर क्यों गाने आई आली ?
क्या हुई बावली ?
अर्द्धरात्रि को चीखी,
कोकिल बोलो तो !
किस दावानल की
ज्वालाएँ हैं दीखी ?
कोकिल बोलो तो !

3 नीज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप-वल्लरी चीर, हठ ठाने, –
दीवार चीरकर अपना स्वर अज़माने,
या लेने आई इन आँखों का पानी ?
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !
खा अन्धकार करते वे जग-रखवाली
क्या उनकी शोभा तुझे न भाई आली ?

तुम रवि-किरणों से खेल,
जगत् को रोज़ जगानेवाली,
कोकिल, बोलो तो,
क्यों अर्द्ध रात्रि में विश्व
जगाने आई हो ? मतवाली–
कोकिल, बोलो तो !

4 डूबों के आँसू धोती रवि-किरनों पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्मांड कँपाते उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा !

तब सर्वनाश करती क्यों हो,
तुम, जाने या बेजाने ?
कोकिल, बोलो तो !
क्यों तमोपत्र पर विवश हुई
लिखने चमकीली तानें ?
कोकिल, बोलो तो !

5 क्या! – देख न सकती जंजीरों का पहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश-राज का गहना !
कोल्हू का चर्रक चूँ ? – जीवन की तान,
गिट्टी पर अँगुलियों ने लिक्खे गान !
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
ख़ाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँआ ।
दिन में करुणा क्यों जगे, रुलानेवाली,
इसलिए रात में ग़ज़ब ढा रही आली ?

इस शान्त समय में,
अन्धकार को बेध, रो रही क्यों हो ?
कोकिल बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज
इस भाँति बो रही क्यों हो ?
कोकिल बोलो तो !

6

काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली,
काली लहर, कल्पना काली,
मेरी काल कोठरी काली,
टोपी काली, कमली काली,
मेरी लोह-शृंखला काली,
पहरे की हुंकृति की व्याली,
तिस पर है गाली, ऐ आली !

इस काले संकट-सागर पर
मरने को, मदमाती–
कोकिल, बोलो तो !
अपने चमकीले गीतों को
क्योंकर हो तैराती ?
कोकिल, बोलो तो !

7

तेरे "माँगे हुए" न बैना,
री, तू नहीं बन्दिनी मैना,
न तू स्वर्ण-पिंजड़े की पाली,
तुझे न दाख खिलाये आली !
तोता नहीं ; नहीं तू तूती
तू स्वतंत्र, बलि की गति कूती
तब तू रण का ही प्रसाद है,
तेरा स्वर बस शंखनाद है।

दीवारों के उस पार
या कि इस पार दे रही गूँजें ?
हृदय टटोलो तो !
त्याग शुक्लता,
तुझ काली को, आर्य-भारती पूजे,
कोकिल, बोलो तो !

8

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली !
तेरा नभ भर में संचार,
मेरा दस फुट का संसार !
तेरे गीत कहावें वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह !
देख विषमता तेरी-मेरी,
बजा रही तिस पर रण-भेरी !

इस हुंकृति पर,
अपनी कृति से और कहो क्या कर दूँ ?–

कोकिल, बोलो तो!
मोहन के व्रत पर,
प्राणों का आसव किसमें भर दूँ ?
कोकिल, बोलो तो !

9 फिर कुहू!... अरे क्या बन्द न होगा गाना ?
इस अंधकार में मधुराई दफ़नाना !
नभ सीख चुका है कमज़ोरों को खाना,
क्यों बना रही अपने को उसका दाना ?
तिस पर करुणा-गाहक बन्दी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियों की श्वासें धोते हैं !
इन लोह-सीखचों की कठोर पाशों में
क्या भर दोगी ? बोलो, निद्रित लाशों में ?

क्या घुस जाएगा रुदन
तुम्हारा नि:श्वासों के द्वारा ?–
कोकिल, बोलो तो !
और सवेरे हो जाएगा
उलट-पुलट जग सारा ?–
कोकिल, बोलो तो !

तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई !

तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई !
भूलती-सी जवानी नई हो उठी,
भूलती-सी कहानी नई हो उठी,
जिस दिवस प्राण में नेह बंसी बजी,
बालपन की रवानी नई हो उठी ।
किन्तु रसहीन सारे बरस रसभरे
हो गए जब तुम्हारी छटा भा गई ।
तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई ।

घनों में मधुर स्वर्ण-रेखा मिली,
नयन ने नयन रूप देखा, मिली-
पुतलियों में डुबा कर नज़र की कलम
नेह के पृष्ठ को चित्र-लेखा मिली ;

बीतते-से दिवस लौटकर आ गए
बालपन ले जवानी संभल आ गई ।
तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई ।

तुम मिले तो प्रणय पर छटा छा गई,
चुंबनों, सावंली-सी घटा छा गई,
एक युग, एक दिन, एक पल, एक क्षण
पर गगन से उतर चंचला आ गई ।
प्राण का दान दे, दान में प्राण ले
अर्चना की अमर चाँदनी छा गई ।
तुम मिले, प्राण में रागिनी छा गई ।

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ ॥
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ॥

मुझे तोड़ लेना बनमाली ।
उस पथ में देना तुम फेंक ॥
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ावे ।
जिस पथ जावें वीर अनेक ॥